बाल साहित्य की विषयवस्तु

प्रभात

शैक्षिक विमर्श में बच्चों के लिए साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की जरूरत स्थापित हो चुकी है लेकिन अभी भी यह हमारे सामाजिक विमर्श का हिस्सा नहीं बन रहा है। व्यापक सामाजिक विमर्श के अभाव में बच्चों को घरों में न तो अच्छा बाल-साहित्य मिल पा रहा है और न ही अच्छा बाल-साहित्य भी सृजित हो रहा है। यह लेख बाल-साहित्य सृजन से संबंधित कुछ समस्याओं को विचार के लिए पेश करता है।

लेखक परिचय

राजस्थान के जाने-माने युवा कवि हैं। एकलव्य, भोपाल; रूम टू रीड, इण्डिया एवं अन्य प्रकाशनों से बच्चों के लिए कविता एवं कहानियों की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। वर्तमान में स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे हैं।

I

हिन्दी भाषा की अपनी कोई बहुत पुरानी परंपरा नहीं है। वह जिन दूसरी भाषाओं की मदद से बनी है, संस्कृत, उर्दू, ब्रज, अवधी आदि उनकी परंपरा इससे गहरी है और उनकी अपनी धरतियां हैं जहां वे घरों में बोली-बरती जाती हैं। हिन्दी की अपनी ऐसी कोई धरती इसके वजूद में आने के लम्बे समय बाद तक नहीं रही जहां वह घरों में बोली-बरती जाए। लोग बाहर बोलचाल में इसका प्रयोग करते रहे लेकिन उनकी घरेलू भाषाएं तमाम स्थानीय भाषाएं रहीं।

हिन्दी घरों में बोलचाल की भाषा बनने के दौर में है, उस प्रक्रिया में है और फलफूल रही है और उसकी अपनी धरती बन रही है। यह अलग बात है कि अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व के दौर में वह उधर से बन रही है, इधर से मिट रही है।

इन बातों के मद्देनजर हिन्दी में बाल साहित्य नई चीज है। आज भी हिन्दी से अधिक बाल साहित्य उन स्थानीय भाषाओं के पास है, जिनसे हिन्दी भाषा बनी है। ब्रज, अवधी, मैथिली, बज्जिका, मगही, बैगा, राजस्थानी, बुंदेलखण्डी, गढ़वाली, कुंमाऊनी आदि- इत्यादि तमाम स्थानीय भाषाओं के पास। हिन्दी से अच्छे और हिन्दी से अधिक खेलगीत, बालगीत, लोक कथाएं, पहेलियां उनके पास हैं। ध्यान देने वाली बात है कि स्थानीय भाषाओं के पास जो बाल साहित्य है, वह सही अर्थों में बाल साहित्य है, उनमें नकली, गैर-जरूरी, बनावटी की घुसपैठ नहीं है। खोखले बाल साहित्य के लिए कोई जगह वहां नहीं है। यह अलग बात है कि स्थानीय भाषाओं का बाल साहित्य हिन्दी की तुलना में प्रायः मौखिक स्वरूप में ही उपलब्ध है। उसके संकलन, दस्तावेजीकरण, संपादन का एक विशाल काम बाकी है।

उम्मीद की जानी चाहिए कि जैसे-जैसे हिन्दी का घरेलू भाषा के रूप प्रयोग करना बढ़ेगा, घरों में उसका सहज स्वभाविक बाल साहित्य भी बनेगा। साहित्यकारों द्वारा ही नहीं घरों में सामान्य जन द्वारा भी कहानियां और गीत गढ़े जाएंगे। सबसे अधिक बच्चों द्वारा गढ़े जाएंगे।

यह छिपी हुई बात नहीं है कि हिन्दी में बनावटी बाल साहित्य बड़े पैमाने उपलब्ध है और उत्पादित हो रहा है। बच्चों को युद्ध में शामिल होने का आह्वान करने वाली राष्ट्रवादी रचनाएं, उन्हें स्वभाविक तौर पर बिना बचपन में प्रवेश करने दिए तुरंत वयस्क बना देने वाली अतिरिक्त समझदार रचनाएं, माता-पिताओं के अपने सपनों के भार से लदी थोथे उपदेशों से भरी रचनाएं आदि जड़ प्रवृत्तियां हिन्दी बाल साहित्य की आरंभ से ही समस्या रही है और आज भी बनी हुई है।

II

समस्त बाल साहित्य को किसी सरलीकृत एक श्रेणी में नहीं डाला जा सकता फिर भी उसकी विषयवस्तु में समसामयिकता के पहलू पर विचार किए जाने की आवश्यकता है। हिन्दी में बाल साहित्य पर शोध, अध्ययन का अभाव नजर आता है। ऐसे अध्ययनों की आवश्यकता है जिनमें समसामयिकता का आशय समझते हुए यह पड़ताल की जाए कि बच्चों के साहित्य में इन दिनों क्या-क्या समसामयिक चीजें आ रही हैं। इसमें यह ध्यान दिए जाने योग्य बात है कि क्या नए नाम, नए घर, नई वस्तुओं जैसे टीवी, इंटरनेट, वीडियो गेम इत्यादि का आ जाना भर पर्याप्त है? बच्चों की रचनाओं में इन सबका महत्त्व शहरी समसामयिक परिवेश को उभारने से अधिक क्या है? एक बहुत बड़े दायरे का परिवेश बिलकुल अलग ही तरह का है। वह परिवेश भारतीय गांवों का है, जहां बच्चों का बचपन स्कूल की औपचारिकता पूरी कर लेने के बाद मेहनत-मजदूरी करते हुए गुजरता है। बच्चों में भी बालिकाओं के जीवन का परिवेश दुखद ढंग से अलग तरह का है। उन्हें घर के कामकाजों में हाथ बंटाने के साथ-साथ छोटे बच्चों की देखभाल में भागीदारी निभानी होती है। असंख्य बच्चे भूख के संघर्ष से जूझ रहे हैं। फुटपाथों, शहर-कस्बों के बस अड्डों, रेलवे स्टेशनों के अलावा भी गांवों में मछली पकड़ते देखे जा सकते हैं। पेट के लिए किसी ढाबे या मोटर गैराज में काम करते देखे जा सकते हैं। अफीम के खेतों, ईंट-चूना भट्टों सब जगह उनकी आबादी फैली हुई है। बचपन के ये जो रूप हैं, विषयवस्तु के तौर पर बाल साहित्य में कितनी जगह पाते हैं, इसकी पड़ताल किए बगैर बाल साहित्य समसामयिक संदर्भों की अनेदखी का ही शिकार होगा।

बच्चों को स्कूल में जिन तनावों का समाना करना पड़ता है, उनकी हल्की-सी भी झलक बाल साहित्य के नाम पर प्रकाशित हो रही रचनाओं में नहीं मिलती है। स्कूल में उन्हें किसी एक तनाव का ही सामना नहीं करना पड़ता। होमवर्क ही उनके तनाव का कारण नहीं है। विशेषाधिकर प्राप्त मॉनिटर भी उनके तनाव का कारण बन जाता है क्योंकि वह कार्यवाहक शिक्षक जैसी भूमिका में होता है। उनके शिक्षक से मिलने वाला तनाव वैसा ही नहीं है जैसा प्रिंसिपल से मिलने वाला तनाव है। संगीत कक्ष में जाते हुए बच्चे घबराएं, खेल के मैदान का जिक्र आते ही शारीरिक शिक्षक का चेहरा आंखों में घूम जाए और मन विषाद से भर जाए। यह सब क्या है? जैसे हर कालांश का विषय अलग होता है, हर कालांश का तनाव भी अलग होता है। हाल ही में उदयपुर में सातवीं कक्षा की एक बालिका ने आत्महत्या कर ली। उसने अपने सुसाइड नोट में लिखा है कि वह अपने शिक्षक का चेहरा नहीं देखना चाहती थी। अगर वह आत्महत्या से पहले घर में किसी से अपनी समस्या साझा करते हुए यह कहती कि वह अपने शिक्षक का चेहरा नहीं देखना चाहती, तब क्या घर में कोई भी उसकी बात पर यकीन करता। उसकी समस्या बेवजह नहीं है, यह बताने के लिए उसे आत्महत्या करनी पड़ी। क्यों एक बालिका के सामने कोई विकल्प ही नहीं बचा। शिक्षकों की आपराधिक वृत्ति पर संज्ञान लेना जब तक केवल पुलिस और न्यायालय की जिम्मेदारी बनी रहेगी तब तक ये अपराध होते रहेंगे। इस विषय पर अभिभावकों, लेखकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं आदि को भी आगे बढ़कर जिम्मेदारी लेनी होगी।

घर में भी कोई बहुत सुखद स्थितियां नहीं हैं। घरवाले प्रायः शिक्षकों और स्कूल के साथ होते हैं। घर में पढ़ो-पढ़ो का शोर उनके बचपन को पग-पग पर कुचलता चलता है। मुहल्ले में वे चीजें क्या हैं जो उनके लिए डरावनी हैं- कुत्ते, बंदर, गाय आदि में नहीं लोगों में। मुहल्ले में वे सुखद चीजें क्या हैं जिनके लिए वे स्कूल जाना छोड़ना चाहते हैं, घर में नहीं टिकना चाहते। वे कौनसे दोस्त, कौनसे खेल, कौनसे गीत हैं, और उनका उनके जीवन में क्या रोमांच है, यह कभी बाल साहित्य में आवेग और जीवंतता के साथ क्यों नहीं आता है।

बच्चों की रचनाओं में बाल सुलभ बातें कम ही होती हैं, बाल सुलभ भाषा भी गायब रहती है। बाल कहानियां पढ़ते हैं तो एक पिटी-पिटायी भाषा से हमारा सामना होता है। एक निरीह भाषा से, जिसमें बच्चा बड़ों से यह कह रहा होता है, 'जी, आज के बाद मैं ऐसा नहीं करूंगा।' हमें ऐसी भाषा पढ़ने को मिलती है जिसमें बड़े बच्चों से पूछते हैं-''तूने यह किया? तूने फिर झूठ बोला?'' बच्चों के सुनना सीख रहे कान इस पुलिसिया भाषा के आगे अपने कोमल राज जल्दी से उगल देते हैं। और मन में राज रखना बंद कर देते हैं। और ऐसा कोई काम नहीं करते जिससे उनके भीतर राज की बुनाई चले।

आमतौर पर देखने में यही आता है कि बचपन के ये रूप बाल साहित्य में जगह नहीं पाते हैं। ऐसा क्यों है? ऐसा क्यों है कि बाल साहित्य को रुचि से लिखने वालों की भी रुचि इन रूपों पर लिखने में नहीं है? कहीं इसलिए तो ऐसा नहीं है कि इन रूपों पर घरों में बैठकर अनुमान लगाते हुए, कोरी अटकलों के सहारे नहीं लिखा जा सकता है। बड़ों की दुनिया के बारे में लिखने वाले लिखने के लिए बहुत खोजबीन मशक्कत करते हैं। जीवन की खोजबीन की मशक्कत। एक पल के लिए सोचकर देखें कि उदय प्रकाश ने *मोहनदास* कहानी लिखने के लिए कितना श्रम किया होगा, कितनी ऊर्जा खपाई होगी। कहां-कहां जाकर तथ्य जुटाए होंगे। कहानी आज के समय में हाशिए के इंसान की त्रासदी को अभिव्यक्त करने के लिए कितना बौद्धिक श्रम किया होगा। बच्चों के लिए लिखने वालों को यह सब करने की जरूरत महसूस नहीं होती। उन्हें लगता है, बच्चों के लिए लिखने में यह सब करने की क्या जरूरत है। बच्चों के लिए ही तो लिख रहे हैं। कौन ध्यान देता है। तो वे इस प्रकार के सरलीकरण करते हैं। यही वजह है कि बच्चों के लिए लिखने वालों की तादाद पर्याप्त मात्रा में होने के बावजूद रचनाएं कुछ ही टिक पाती हैं। *लिटिल प्रिंस, एलिस इन वण्डरलैंड* सरीखे कद की रचनाएं तो आज भी हमारे पास नहीं हैं। हमारे यहां बच्चों के जीवन को अभिव्यक्त करने वाली रचनाओं की स्थिति उतनी ही दयनीय है, जितना दयनीय बचपन है।

सवाल यह है कि बाल साहित्य लेखक आवश्यक श्रम क्यों नहीं करता है? इसकी अनेक ठोस वजहें हैं। एक तो वही जिसका जिक्र किया, बाल साहित्य को लेकर सरलीकृत रवैया, जिसके चलते बेतहाशा फार्मूला साहित्य का उत्पादन हो रहा है। जिसका लाभ मुनाफाखोर प्रकाशकों को मिल रहा है। इससे एक बड़ा नुकसान पर्यावरण को भी हो रहा है, बाल साहित्य के नाम पर बहुत अधिक मात्र में ऐसा साहित्य छापकर पटक दिया जाता है कि जो नहीं हो तो बाल साहित्य का कोई नुकसान नहीं होगा। कागज की बर्बादी होने से बचेगी।

बाल साहित्य के लेखक के श्रमशील न होने की दूसरी वजह यह है कि उस बेचारे का कहीं कोई सम्मान नहीं है। पैसा तो है ही नहीं, सम्मान भी नहीं है। हाल ही में दिल्ली में बाल साहित्य की किताबों के लोकार्पण का एक विश्वस्तरीय जलसा हुआ। विश्वस्तरीय इसलिए कि जिस फण्डिंग एजेंसी ने इस जलसे का आयोजन किया था वह विश्वस्तरीय थी। उसका बाकायदा एक ग्लोबल ऑफिस है और दुनिया के अनेक देशों में उसका काम है और बाल साहित्य उत्पादन भी उसके कई दूसरे कामों के साथ-साथ एक काम है। जलसे में भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री आए। किताबों के लोकार्पण के समय मंच पर सब मौजूद थे किताबों के लेखकों के सिवा। लेखकों की उपस्थिति को सर्वाधिक गैर-जरूरी समझा गया। उन्होंने उनका लेखन खरीद लिया था। उसकी कीमत चुका दी थी। अब उन्हें मंच पर बुलाने का कोई औचित्य नजर नहीं आया। और ठीक भी था ऐसे तो कल को जलसे में फूल वाले, चाय वाले भी मंच पर जगह मांगेंगे, बहुत भीड़ हो जाएगी। तो यह मामला है।

बच्चों के लिए लिखने वालों को इन बातों से क्षुब्ध नहीं होना चाहिए। सम्मान तो हिन्दी के लेखक का वैसे भी नहीं है। और उसके लिए कोई जीवन रक्षा उपाय भी नहीं है। फिर भी लोग लेखक बनने की दिशा में खुद को झोंकते ही हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि हिन्दी में अच्छे लेखकों की खेप आएगी जो बाल साहित्य की वास्तविक विषय वस्तुओं की खोज करेगी और रचेगी। बचपन जैसा कि वास्तव वह में है, उसे अभिव्यक्ति मिलेगी। ◆